30.0 भारतीय ज्ञान परंपरा में योग एवं साधना पद्धति (जैन दर्शन के विशेष संदर्भ में)

- **डॉ. नेहा जैन**, असि. प्रो. समाजशास्त्र, पंडित दीनदयाल उपाध्याय राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, लखनऊ
  Email-neha090683@gmail.com

शोध- सार

भारतीय अध्यात्मवादी परंपरा में योग साधना का अस्तित्व अति प्राचीन काल से ही रहा है। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की खुदाई में ध्यान मुद्रा में जोगियो के अंकन पाए जाते हैं ।औपनिषदिक ऋषिगण और श्रमण-साधक अपनी वैदिक जीवनचर्या में योग साधना को स्थान देते रहे हैं। बुद्ध और महावीर को ज्ञान का जो प्रकाश उपलब्ध हुआ वह उनकी योग, ध्यान, साधना का ही परिणाम था। प्रेक्षाध्यान और विपश्यना जैन एवं बौद्ध परंपराओं की उन्हीं पद्धतियों के आधुनिक रूप है। इसी योग समाधि के द्वारा वैदिक काल में कितने ही ब्रह्मउपासक मंत्रदृष्टा ऋषि बन गए जिनका प्रमाण वेद की ऋचाएं हैं। सूत्रकृतांग -सूत्र जैसे सबसे पुराने जैन धर्म ग्रंथो में योग और ध्यान का उपयोग संयम या संयम के अभ्यास को संदर्भित करता है जिसे योगवान द्वारा मूर्त रूप दिया गया है। योगवान वह व्यक्ति है जिसके पास संयम है और जो ज्ञानयोग दर्शनयोग और चरित्रयोग में आधिकारिक है।

मुख्य शब्द- *प्रेक्षाध्यान, ज्ञानयोग, कायोत्सर्ग, सामायिक,योगवान दर्शनयोग, चरित्रयोग*

योग विद्या भारतवर्ष की अमूल्य निधि है जो सुदूर अतीत काल से रूप में गुरु -परंपरापूर्वक चली आ रही है ।यही एक ऐसी विधा है जिसकी साधना से अनेक लोग अजर अमर होकर देह रहते ही सिद्ध पदवी को प्राप्त किए हैं। युगो युगों से चला आ रहा यह योग वस्तुतः भारतीय ऋषि मुनियों यथा यति- योगियो के अध्यवसाय एवं साधनालाभ अंतरजगत का महत्वपूर्ण अंतरविज्ञान है ।इसी योग समाधि के द्वारा वैदिक काल में कितने ही ब्रह्माउपासक मंत्र दृष्टा ऋषि बन गए जिनका प्रमाण वेद की ऋचाएं हैं।

ऋग्वेद जो भारतवर्ष का ही नहीं अपितु विश्व का प्राचीनतम ग्रंथ माना जाता है, में सर्वप्रथम योग का संकेत मिलता है,विद्वानों की ऐसी मान्यता है परंतु योग का प्रारंभ वेद से ही हुआ इस संबंध में विद्वानों में एकमत नहीं है ।कुछ विद्वानों की मान्यता है कि योग सिंधु कालीन सभ्यता की देन है इस संबंध में सर जॉन मार्शल ने लिखा है कि मोहनजोदड़ो में जिस नरदेवता देवता की मूर्ति मिली है,वह त्रिमुखी है ।वह देवता एक कम ऊंचे पीठासन पर योग मुद्रा में बैठा है। उसके दोनों पैर इस प्रकार मुड़े हुए हैं कि एड़ी से एड़ी मिल रही है, अंगूठे नीचे की ओर मुड़े हुए हैं एवं हाथ घुटने के ऊपर आगे की ओर फैले हुए हैं। इतना ही नहीं मोहनजोदड़ो से प्राप्त एक मुद्रा पर अंकित चित्र में त्रिरत्न, मुकुट विन्यास, नग्नता, कायोत्सर्ग, नासाग्रदृष्टि, बैल आदि के चिन्ह है जिससे यह प्रमाणित होता है की मूर्ति योगी के अतिरिक्त और किसी की नहीं हो सकती है। अतः यह बताना कि योग -साधना-काल मोहनजोदड़ो की खुदाई के बाद प्रारंभ होता है उचित नहीं जान पड़ता है। मोहनजोदड़ो की सभ्यता का काल संभवत ई. पू.3250 -2750 माना जाता है जो,योग साधना का काल ही है। अतः सिंधु सभ्यता,वैदिक सभ्यता की समकालिक योग-मूलक सभ्यता है। यह सभ्यता मिश्रित संस्कृति से युक्त थी जो परंपरागत रूप से आज भी भारतीय संस्कृति की एक प्रबल विशेषता है।

परंतु 'योग' एक व्यावहारिक एवं ध्यानपरक सिद्धांत थे जिसे किसी की सीमा में बांधना उचित नहीं जान पड़ता क्योंकि योग का ज्ञान मनुष्य की अंतरात्मा से संबंधित होता है। अतः यह कहना उचित होगा कि योग विद्या का प्रचलन सृष्टि के आरंभकाल से ही हो गया था जैसा कि महाभारत में कहा गया है कि हिरण्यगर्भ ही योग का वक्ता है उससे पुरातन अन्य कोई नहीं है। यहां यह भी स्पष्ट कर देना उचित है कि वेदों में योग शब्द कई अर्थों में प्रयोग हुआ है ऋग्वेद में योग शब्द का अर्थ केवल जोड़ना है। ई.पू.700 -800 तक के निर्मित वैदिक साहित्य में इसका अर्थ इंद्रियों को प्रवृत करना तथा तथा उसके बाद के लगभग ई.पू. 500- 600 में लिखित साहित्य में इंद्रियों पर नियंत्रण रखना भी निर्देशित किया गया है। जिससे यह ज्ञात होता है कि योग का सर्वप्रथम उल्लेख

वेद में ही हुआ है वेद के बाद जैसे-जैसे साहित्य का विकास होता गया है वैसे-वैसे योग साधना का उपनिषद, दर्शन, पुराण, स्मृति आदि में पुष्पक रूप में वर्णन मिलता है।

सूत्रकृतांग -सूत्र (लगभग दो शताब्दी ईसा पूर्व) जैसे सबसे पुराने जैन धर्म ग्रंथो में योग और ध्यान का उपयोग संयम या संयम के अभ्यास को संदर्भित करता है,जिसे 'योगवान' (प्राकृत: जोगवान) द्वारा मूर्त रूप दिया गया है। इस ग्रंथ पर जिनदास की टिप्पणी में हम देखते हैं कि 'योगवान वह व्यक्ति है जिसके पास संयम है और जो ज्ञान-योग, दर्शन-योग, चरित्र-योग में आधिकारिक है। यह तीन योग निसंदेह जैन परंपरा के त्रिरत्नों के अनुरूप हैं : सम्यक दर्शन, सम्यक ज्ञान, सम्यक चारित्र ।बाद में जैन योग में शामिल कई अभ्यास विकसित हुई जिसमें भावना - योग और ध्यान-योग जैसे अभ्यास का वर्णन मिलता है। महावीर को सबसे पुराने जीवित जैन धर्म ग्रंथ आचारंग- सूत्र (लगभग 4 शताब्दी ईसा पूर्व) में कई परिदृश्य में ध्यान (प्रकृत: झाण) करते हुए पाया जाता है, एक अभ्यास जो उनके तपस्वी अभ्यास के साथ था जिसके माध्यम से वह सभी प्रकार के जीवन के प्रति अहिंसा के लिए खुद को प्रतिबद्ध करने के लिए संकल्पित थे क्योंकि कोई भी दर्द का अनुभव नहीं करना चाहता। शास्त्रीय काल में जैन परंपरा के भीतर और बाहर के कई दार्शनिक विद्वानों ने संस्कृत में ग्रंथ लिखना शुरू किया जिसमें उन्होंने विभिन्न दर्शन और सिद्धांतों को व्यवस्थित किया। प्रसिद्ध जैन ग्रंथ उमास्वाति द्वारा रचित जैन ग्रंथ ' तत्वार्थ -सूत्र' (लगभग पांचवीं शताब्दी ईसा) मैं उन्होंने योग शब्द को बिल्कुल नए संदर्भ में रखा है, यहां योग का अर्थ है "कंपन ", या शरीर, वाणी या मन की कोई भी "क्रिया "जो किसी की आत्मा की ओर कर्म के अवांछितकण आकर्षित करती है। जैन परंपरा में सर्वज्ञता और अंततः मुक्ति या मोक्ष प्राप्त करने के लिए सभी कर्मों को समाप्त किया जाना चाहिए फिर चाहे वह अच्छे कर्म हो या बुरे ।उमा स्वाति ने अपने ग्रंथ में योग के निरोध या संयम का वर्णन करने के लिए वही शब्द का इस्तेमाल किया है जिसका प्रयोग पतंजलि ने अपने प्रसिद्ध योग-सूत्र (लगभग पांचवीं शताब्दी ई) में योग को परिभाषित करने के लिए किया है। पतंजलि के लिए "योग मन के उतार-चढ़ाव का संयम (निरोध) है" (योग सूत्र 1.2) एक ऐसी अवस्था है जिसके परिणाम स्वरुप ध्यान में डूबना (समाधि)होता है ।उमास्वाति के अनुसार, "यह (योग) कर्म (आश्रव) का प्रवाह है" (6.2) और इसे रोका जाना चाहिए। जिसे हम "(आत्मा को) ढकना" (संवर) के रूप में अनुवाद कर सकते हैं उसके लिए अभ्यास आवश्यक है।

जैन धर्म में दैनिक अनुष्ठानों में योग और ध्यान को शामिल किया गया है। योग और ध्यान को एक दूसरे से अलग नहीं है बल्कि यह अनुष्ठान का एक हिस्सा है।

जैन धर्म में योग और ध्यान आध्यात्मिकता का एक मूल अभ्यास रहा है ।सभी तीर्थंकरों के लिए एक मुख्य आध्यात्मिक अभ्यास रहा है। सभी 24 तीर्थंकर मनुष्य थे उन्होंने पूर्णज्ञान और आत्मसाक्षात्कार की स्थिति प्राप्त करने के लिए कई वर्षों तक विभिन्न शारीरिक योग,आसन और गहन ध्यान का अभ्यास किया। महावीर स्वामी ने 30 वर्ष की आयु में सांसारिक जीवन त्याग दिया और साढ़े बारह वर्ष योग और गहन ध्यान में बीते। इस अवधि के दौरान उन्होंने आध्यात्मिक रूप से प्रगति की और इच्छाओं,भावनाओं, आसाक्तियों पर विजय प्राप्त की साथ ही चार घटी (भ्रामक) कर्मों को नष्ट किया और गोदुहिकासन (दूध देने की मुद्रा) में रहते हुए आत्मज्ञान या केवल ज्ञान प्राप्त किया। योग और ज्ञान हमें अपनी आत्मा की सच्ची प्रकृति का एहसास करने में मदद करते हैं ।जैन धर्म भाव (आंतरिक प्रतिबिंब)पर आधारित है और हमारी अध्यात्मिक प्रगति हमारे दोष या कषाय को कम करने की ओर है ।ध्यान हमें आंतरिक शांति, जीवन का उद्देश्य और समभाव प्राप्त करते हुए आध्यात्मिक रूप से बढ़ने में मदद कर सकता है।लगभग 2600 वर्ष पहले ऋषि पतंजलि'जिन्हे योग के जनक' के रूप में भी जाना जाता है ने 'योग सूत्र'नामक एक पुस्तक लिखी थी ।अपनी पुस्तक में उन्होंने आठ प्रगतिशील या व्यवस्थित चरणों में योग की एक विधि का वर्णन किया जिसे लोकप्रिय रूप से अष्टांग योग के रूप में जाना जाता है। ऋषि पतंजलि के अष्टांग योग को जैन आचार्य श्री हरिभद्र सूरी (8वीं शताब्दी) ने मुक्ति पाने के आध्यात्मिक मार्ग के रूप में सम्मान पूर्वक स्वीकार किया। योग पर कुछ पुस्तक लिखी और अपनी पुस्तकों के माध्यम से जैन योग के विकास में योगदान दिया। जैन दर्शन में योग और ध्यान पर कुछ प्रसिद्ध जैन ग्रंथ जैसे -

जिनभद्रगणी क्षमाक्षमन(6वीं शताब्दी)

- ध्यान शतक (ध्यान के संदर्भ में प्राचीन जैन पुस्तक)

हरिभद्रसूरी (8वीं शताब्दी)

- योग दृष्टि समुच्चय (पतंजलि के योग सूत्र पर आधारित योग के आठ चरण)
- योग बिंदु
- योग विंशिखा
- योग शतक

शुभचंद्र आचार्य -(11वीं शताब्दी)

- ज्ञानार्णव (योग कार्य)

हेमचंद्राचार्य (12वीं शताब्दी)

- योग शास्त्र

यशोविजय जी (17वीं शताब्दी)

- ऋषि पतंजलि के योग सूत्र की टीका

चिदानंद जी महाराज (18 वीं शताब्दी) श्रीमद् राजचंद्र (19वीं शताब्दी)

आचार्य महाप्रज्ञ जी (20वीं शताब्दी)

- प्रेक्षा ध्यान **:** कोई भी क्रिया जो मन को आसक्ति और द्वेष से मुक्त करके शुद्ध करती है, उसे योग कहते हैं। योग केवल भौतिक शरीर को ही नहीं बल्कि बौद्धिक और भावनात्मक अस्तित्व सहित संपूर्ण अस्तित्व को संदर्भित करता है।

ऋषि पतंजलि ने कहा है योग: चित्तवृत्तिनिरोध: उच्चतम मिलन प्राप्त करने के लिए चित्तवृत्ति या विचार प्रक्रिया को शांत करना।

आचार्य हरीभद्र ने कहा मोक्षेण योगत योग:आत्मा को मुक्ति से जोड़ता है वह योग है।

तत्वार्थ सूत्र में आचार्य उमास्वाति ने कहा है की 'इच्छा निरोध इति तप: अगर कोई इच्छा नहीं है तो कोई नया कर्म नहीं जुड़ेगा यही मुक्ति या मोक्ष की परिभाषा है। इसीलिए ऋषि पतंजलि की योग की परिभाषा और जैन धर्म की परिभाषा तप एक ही है।

गीता में भगवान श्री कृष्ण ने कहा 'समत्वं योग उच्यते' - 'समता ही योग है'।

जैन धर्म में योग के चार प्राथमिक मार्ग और चार प्रकार के ध्यान प्रमुख रूप से मिलते हैं।

समग्र अर्थ में योग वह विज्ञान है जो हमें अपने शरीर मन और आत्मा के साथ संवाद करने में मदद करता है योग शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक और आध्यात्मिक अनुशासन पर आधारित है।

1. भक्ति योग (भक्ति का मार्ग) भक्ति का मार्ग सर्वोच्च प्रेम और आनंद पर केंद्रित है। यह भक्ति और समर्पण के माध्यम से सत्य की प्राप्ति में विश्वास रखता है। प्रार्थना,अनुष्ठान और औपचारिक प्रक्रियाएं इसका मूल दृष्टिकोण है ।तीर्थंकरों के नाम का जाप गायन भी महत्वपूर्ण अभ्यास के अंतर्गत आते हैं आध्यात्मिक प्रगति के प्रारंभिक चरण में भक्ति योग का अभ्यास करने के लिए किसी पवित्र स्थान मंदिर की आवश्यकता होती है अंततः भक्ति योग के माध्यम से अहंकार नष्ट होता है और विनम्रता का व्यक्तित्व में समावेश होता है।

2- ज्ञान योग (ज्ञान का मार्ग) यह मार्ग चिंतन की अवस्था से संबंधित है जिसमें अध्ययन, सोच, प्रत्यक्ष जांच को अभ्यास के स्वरूप में प्रयोग किया जाता है। यह मार्ग ब्रह्मांड में वास्तविकता और वास्तविकता के मध्य या भ्रम (मिथ्यात्व या माया) के बीच

आध्यात्मिक भेदभाव द्वारा दर्शाया गया है प्रारंभिक चरण में ज्ञान योग का अभ्यास करने के लिए किसी सच्चे शिक्षक, गुरु या शास्त्रों के मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है ।जैन धर्म और बौद्ध धर्म दोनों मुख्य रूप से इस मार्ग का उपयोग करते हैं।

3- कर्म योग (कार्य का मार्ग) कर्म योग मानवता और सभी जीवित प्राणियों के लाभ के लिए निस्वार्थ सेवा का योग है ।इसमें सामाजिक कार्य पारिस्थितिकी पर्यावरण संरक्षण शिक्षा पशु संरक्षण और देश और समाज के हित में कल्याणकारी कार्यों का अभ्यास किया जा सकता है ।जैन धर्म मनसा वाच: कर्मणा के सिद्धांत पर आधारित है अर्थात मन, वचन, काय (शरीर) किसी भी प्रकार के गलत भाव ना रखना एवं धर्म आचरण के विरुद्ध कोई कार्य न करना ।संयम एवं साधना इसका प्रथम चरण है।

4- अष्टांग योग (आत्म नियंत्रण और ध्यान का मार्ग) ऋषि पतंजलि ने आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करने के लिए आवश्यक आठ चरणों जिन्हें अष्टांग योग के रूप में जाना जाता है की रूपरेखा प्रस्तुत की।

1- यम (संयम:) पतंजलि ने यम को महाव्रतम कहा है जिसका अर्थ है महान व्रत यम का अभ्यास सार्वभौमिक है इसे वर्ग, स्थान, समय या परिस्थितियों तक सीमित नहीं किया जाना चाहिए।

योग सूत्र में सूचीबद्ध पांच यम है **सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह**

जैन धर्मावलंबियों के जीवन व्यवहार का प्रमुख आधार यही पंचशील सिद्धांत है।

2- नियम (पालन) नियम के अंतर्गत व्यक्ति को स्वच्छता (बाहरी और आंतरिक) संतोष, तपस्या, धार्मिक अध्ययन स्वाध्याय) और सच्चे आत्म के प्रति आत्मसमर्पण जैसे गुणों का विकास करना चाहिए। नियम आत्म नियंत्रण के बारे में है।

3-आसन (शारीरिक व्यायाम) लंबे समय तक ध्यान के लिए शरीर को स्वस्थ और रीड की हड्डी को सीधा रखने के लिए शारीरिक व्यायाम करना चाहिए योगासन एक ऐसी मुद्रा है जो व्यक्ति की आंतरिक चेतना के साथ सामंजन स्थापित करती है आसान मानव शरीर की मूल संरचना को संतुलित और सामंजस्य पूर्ण बनाने में भी मदद करते हैं।जैन साधना में योगासन मुद्रा, कायोत्सर्ग में प्रतिमाएं देखने को मिलते हैं।

4- प्राणायाम (लयबद्ध श्वास) लयबद्ध श्वास मन की एकाग्रता में मदद करती है। स्थिर बैठना और लयबद्ध श्वास मन को भीतर की ओर देखने के लिए उपयुक्त बनती है। प्राणायाम शरीर को एकाग्रता और ध्यान के लिए उपयुक्त है।प्राणायाम की विभिन्न तकनीक शरीर को चुस्ती, शक्ति और लचीलापन प्रदान करती हैं जिससे साधक अपनी शारीरिक आवश्यकताओं को नियंत्रित कर सकता है। यह शरीर की सभी अशुद्धियां को दूर करता है वह मन और संवेदी अंगों को भी शांत करते हैं जिससे एकाग्रता बढ़ती है।

5- प्रत्याहार (मन की वैराग्य) प्रत्याहार दो संस्कृत शब्दों के प्रति "विरुद्ध" और आहार- "भोजन", आहार या सेवन का संयोजन है। व्यक्ति को पांच इंद्रियों से मन को अलग करने का अभ्यास करना चाहिए**:** स्पर्श**,** स्वाद**,** गंध**,**दृष्टि और ध्वनि**,** जो सुखद या अप्रिय भावनाएं प्रदान करते हैं। यह मानसिक व्यायाम धीरे-धीरे भीतर से मन की सतह पर विचारों की चंचलता को धीमा कर देता है अब मन एक वस्तु या एक विचार पर ध्यान केंद्रित करने के लिए तैयार हो गया है। प्रत्याहार व्यक्ति को बाहरी जगत के नियंत्रण से मुक्त होने, आत्मज्ञान की खोज में अपना ध्यान केंद्रित करने तथा अपने आंतरिक जगत में निहित स्वतंत्रता का अनुभव करने की शक्ति प्रदान करता है।

6-धारणा:(एक ही कार्य पर मन का पूर्ण ध्यान केंद्रित करना) धारणा का अर्थ है एकाग्रता, आत्मनिरीक्षण पर ध्यान और मन की एकाग्रता। योग के छठे अंग के रूप में धारणा किसी व्यक्ति के मन को किसी विशेष आंतरिक स्थिति, विषय या मन के विषय पर केंद्रित करना है। मन को किसी मंत्र या अपनी सांस / नाभि/ जीभ की नोक /किसी स्थान, या किसी वस्तु जिसे कोई देखना चाहता है, या किसी व्यक्ति के मन में किसी अवधारणा विचार पर स्थिर किया जाता है। मन को स्थिर करने का अर्थ है एक बिंदु पर ध्यान केंद्रित करना मन को भटकाए बिना।

7- ध्यान: ध्यान का धारणा से अभिन्न संबंध है, एक दूसरे की ओर ले जाता है ।ध्यान मन की एक अवस्था है, ध्यान मन की एक प्रक्रिया है। ध्यान लगाने वाला व्यक्ति सक्रिय रूप से ध्यान करता है यह अवस्था समाधि से पूर्व की अवस्था है। ज्ञान विचारों की निर्वाण श्रृंखला**,** अनुभूति की धारा**,** जागरूकता का प्रभाव है।

8- समाधि: समाधि का शाब्दिक अर्थ है "एक साथ रखना, जुड़ना संयोजन करना, मिलन, सामंजस्यपूर्ण संपूर्णता समाधि"

जहां अभ्यास के माध्यम से ध्यान समाधि में बदल जाता है। सभी योग प्रयासों का शिखर है व्यक्ति और सार्वभौमिक आत्मा के बीच परम "योग" या संबंध। जैन धर्म में आज भी साधु साध्वी समाधि की अवस्था में ही अपने प्राण त्याग करते हैं जिसे समाधि मरण या संथारा के नाम से जाना जाता है।

योग के चार मुख्य मार्गो का अनुकरण जैन दर्शन में दिखाई देता है और ध्यान अष्टांग योग के चरणों में से एक है। आचार्य उमा स्वामी ने चार प्रकार के ध्यान का का उल्लेख किया है।

जैन दर्शन में ध्यान

उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिन्ता निरोधो ध्यानमान्तर्मुहूर्तात्' (तसू, 9/27) उत्तम संहनन वाले का एक विषय में चित्त की वृत्ति को रोकना ध्यान है, जो अन्तर्मुहूर्त काल तक होता है।

निश्चयनयापेक्षा - इष्टानिष्ट बुद्धि के मूल, मोह का छेद हो जाने से चित्त स्थिर हो जाता है। उस चित्त की स्थिरता को ध्यान कहते हैं।

'चित्तविक्षेपत्यागो ध्यानम्'-चित्त के विकल्पों का त्याग करना ध्यान है। (स सि, 9/20/858)

ध्यान,मन को बिना भटकाए एक ही विषय पर केंद्रित करने की प्रक्रिया है। यदि एकाग्रता तीव्र जुनून या नकारात्मक भावनाओं से जैसे आसक्ति,द्वेष, घृणा या दुश्मनी से उत्पन्न होती है तो यह हमारे लिए गलत, गैर पुण्य और अयोग्य है।

दूसरी ओर यदि एकाग्रता सकारात्मक भावनाओं और सांसारिक मामलों से विरक्ति से उत्पन्न होती है तो यह हमारे लिए सही, पुण्य और योग्य है।इस तरह का ध्यान आध्यात्मिक विकास और मुक्ति में मदद करता है। आचार्य उमास्वाति ने इन्हें चार प्रकार के ध्यान में वर्गीकृत किया।

1- आर्तध्यान 2-रौद्र ध्यान 3- धर्मध्यान 4- शुक्ल ध्यान।

1.आर्तध्यान

आर्त नाम दु:ख का है। दुखानुभव में चित्त का रुकना आर्तध्यान है, इसके चार भेद हैं। इष्ट वियोगज, अनिष्ट संयोगज, वेदनाजन्य एवं निदान।

इष्टवियोगज - इष्ट गुरु शिष्य, मित्र, भाई, स्त्री, धन, क्षेत्र आदि के वियोग होने से, उसके संयोग के लिए जो निरंतर चिंतित रहता है, उसे इष्ट वियोगज आर्तध्यान कहते हैं।

अनिष्ट संयोगज - अनिष्ट नेता, वस्तु, क्षेत्र, बंधु आदि के संयोग होने पर उसके वियोग के लिए जो निरंतर चिंतन होता है, उसे अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान कहते हैं।

वेदनाजन्य - कैंसर, ब्लडप्रेशर, एड्स, हार्टअटैक, टी.वी., ट्यूमर आदि महारोग की वेदना होने पर उसे दूर करने के लिए हमेशा चिंतन करता है, उसे वेदना जन्य या पीड़ा चिंतन आर्तध्यान कहते हैं।

निदान - आगामी भोगों की आकांक्षा से पीड़ित होकर उसकी प्राप्ति के लिए चिंतन करना निदान आर्तध्यान है।

2.रौद्रध्यान क्रूर परिणामों से उत्पन्न हुए ध्यान को रौद्रध्यान कहते हैं। इसके चार भेद हैं

हिसानंद - हिंसा करने, कराने व अनुमोदना में आनंद मानने को हिंसानन्द रौद्रध्यान कहते हैं।

मृषानन्द - झूठ बोलने में, दूसरों से झूठ बुलवाने में व झूठ बोलने वाले की अनुमोदना करने में तथा चुगली आदि में आनंद मानने को मृषानंद रौद्रध्यान कहते हैं।

चौर्यानन्द - चोरी करने में, कराने में, चोरी की अनुमोदना करने में, चोर को न्याय दिलाने में और चोरी का माल खरीदने में आनंद मानने को चौर्यानन्द रौद्रध्यान कहते हैं।

परिग्रहानन्द या विषय संरक्षणानंद - परिग्रह संचय करके आनंदित होना, विषयभोगों की वस्तुओं का संरक्षण करना, उसके संरक्षण व संचय में आनंद मानना परिग्रहानंद रौद्रध्यान

3. धर्म ध्यान शुभ विचारों में मन का स्थिर होना धर्मध्यान है। अथवा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक् चारित्र को धर्म कहते हैं और उस धर्म से युक्त जो चिंतन होता है, उसे धर्मध्यान कहते हैं। (र.क.श्रा, 3) अथवा मोह तथा क्षोभ से रहित जो आत्मा का परिणाम है, वह धर्म कहलाता है। उस धर्म से उत्पन्न जो ध्यान है, उसे धम्र्यध्यान कहते हैं। (त.अ., 52) इसके चार भेद हैं।

आज्ञाविचय - जो इन्द्रियों से दिखाई नहीं देते ऐसे बंध, मोक्ष आदि पदार्थों में जिनेन्द्र भगवान् की आज्ञा के अनुसार निश्चय कर ध्यान करना सो आज्ञाविचय धर्मध्यान है।

अपायविचय - संसार में भटकते प्राणी मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान एवं मिथ्याचारित्र से कैसे दूर हों, इस प्रकार निरंतर चिंतन करना अपाय विचय धर्मध्यान है।

विपाकविचय - (अ) कर्मों के उदय से सुख-दु:ख होता है, ऐसा चिंतन करना विपाक विचय धम्र्यध्यान है। (ब) जीवों को जो एक, अनेक भव में पुण्य-पाप कर्मों का फल प्राप्त होता है, उसके उदय, उदीरणा, संक्रमण, बंध और मोक्ष का चिंतन करना विपाकविचय धर्मध्यान है। (मू.401)

संस्थानविचय - तीन लोक के आकार, प्रमाण आदि का चिंतन करना संस्थानविचय धर्मध्यान है।

ध्याता अर्थात ध्यान करने योग्य

पञ्चशील का पालन करने वाला हो अर्थात् पाँचों पापों से रहित हो। ध्यान के लिए मौन पथ्य है। मौन कैसा हो ? मन से, वचन से और काय से अर्थात् मन में बोलने के भाव नहीं लाना। वचन से हूँ, हूँ भी नहीं करना एवं काय से कुछ भी न करना अर्थात् न इशारा करना, न लिखकर बताना। भोजन एक बार वह भी सीमित मात्रा में एवं भोजन सात्विक हो, अधिक तले, मिर्च मसाले एवं गरिष्ठ पदार्थ न हों, जनसम्पर्क न हो, मन को वश में करने वाला हो, जितेन्द्रिय हो, आसन स्थिर हो, धीर हो अर्थात् उपसर्ग आने पर न डिगे। ऐसे ध्याता की ही शास्त्रों में प्रशंसा की गई है।

संदर्भ

आचार्य उमास्वाति विचरित, तत्वार्थ-सूत्र प्रकाशक, पारस विद्याश्रम शोध संस्थान,वाराणसी
डॉ. हुकुमचंद भारिल, ध्यान का स्वरूप, प्रकाशक, पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट ए 4 बापू नगर जयपुर राजस्थान
प्रज्ञा, सामानी प्रतिभा 2020.जैन परंपरा में योग और ध्यान"
प्रियदर्शनाश्री जी, जैन साधना पद्धति में ध्यान योग, प्रकाशक, रतन जैन पुस्तकालय
सुधा जैन जैन एवं बौद्ध योग एक तुलनात्मक अध्ययन, प्रकाशक,पारस विद्यापीठ वाराणसी
आचरंगसूत्र, श्रीआगम प्रकाशन समिति ब्यावर 1980.
आचार्य तुलसी उत्तराध्ययन, जैन विश्व भारती, लाडनूं राजस्थान
जिनसेनाचार्य, आदिपुराण (महापुराण) भाग1, 2 प्रकाशक, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, 1951
गुणभद्र, आत्मानुशासन, जैन ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय मुंबई, 1986